ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

संवैधानिक संस्थाएं एवं लोकतंत्र

Bhawani Mal Khatik

Assistant Professor in Political Science, Swami Vivekanand Govt. College, Khetri, Rajasthan, India

सार

भारत में संसदीय लोकतंत्र अपनाने का मुख्य कारण इसकी विविधता है । भारत की विविधता को ध्यान में रखते हुए ही लोकतंत्र को मजबूत करने के उद्देश्य से संविधान की रचना की गई। इंफॉर्मेशन और टेक्नोलॉजी को स्वर्गीय राजीव गांधी ने बहुत मजबूत बनाया लेकिन आज उसी का दुरुपयोग करके विपक्ष की आवाज को दबाया जा रहा है । आज देश एक अलग तरीके की चुनौती का सामना कर रहा है । आज एक देश एक विचार की कुनीति से लोकतंत्र की हत्या की जा रही है। संसद के चलते हुए भी ऑर्डिनेंस के द्वारा सरकार चलाई जा रही है ताकि संसद की भूमिका को समाप्त किया जा सके। एक ही विचारधारा को सभी पर थोपने के लिए लोकतंत्र के सभी स्तंभों को योजनाबद्ध तरीके से धाराशायी किया जा रहा है । स्वर्गीय राजीव गांधी जी की हमेशा यह कोशिश रही कि बंपर बहुमत होने के बावजूद विपक्षी दलों को पूरा सम्मान दिया जाए और उनके विचारों को अपने निर्णयों में शामिल किया जाए । आज केंद्र सरकार अपने बहुमत का दुरुपयोग करते हुए न्यायपालिका, मीडिया, चुनाव आयोग और तमाम अनेक सरकारी संस्थाओं को दबाव में लेकर अपनी मनमानी कर रही है। वर्तमान केंद्र सरकार सत्ता को केंद्रीकृत करके लगभग अधिनायकवाद की ओर ले जा रही है । इस सरकार ने सीबीआईए इनकम टैक्स, ईडी और यहां तक कि न्यायपालिका जैसी संस्थाओं को भी राजनीतिक विरोधियों के खिलाफ उपयोग में लाने के लिए शक्तिहीन कर दिया है।

परिचय

उपराष्ट्रपति ने संस्कृत के एक श्लोक 'धर्मो रक्षति रक्षित:' का हवाला दिया (कानून तभी हमारी रक्षा करता है जब हम उसकी पवित्रता को बरकरार रखते हैं) और इसे लोकतंत्र एवं कानून के शासन के 'अमृत वचन' करार दिया। यह देखते हुए कि मौजूदा दौर में यह धारणा बन गई है कि यह महत्वपूर्ण सिद्धांत दबाव में है, उन्होंने अधिकारियों और उच्च पदों पर बैठे लोगों को जनहित में कानून को सर्वोपरि रखने और लोकतांत्रिक परिवेश को बेहतर करने के लिए कहा। थॉमस फुलर को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा, 'चाहे आप कितने भी ऊंचे हो जाओ, कानून हमेशा आपसे ऊपर है।' कानून एक ईर्ष्यालु मालकिन है और उसे लंबे एवं निरंतर प्रेम भाव की आवश्यकता होती है। इसे महज एहसानों से नहीं बल्कि उदार निष्ठा से जीतना है।' अधिकारियों और उच्च पदों पर बैठे लोगों को व्यापक जनहित में इसका संज्ञान लेने और लोकतांत्रिक परिवेश को बेहतर करने की आवश्यकता है।[1,2]

ढांचागत तौर पर मजबूत, निष्पक्ष एवं स्वतंत्र न्याय व्यवस्था लोकतांत्रिक मूल्यों के फलने-फूलने और उसमें निखार लाने के लिए सबसे सुरक्षित गारंटी है।न्यायाधीशों की गरिमा एवं न्यायपालिका का सम्मान अपरिहार्य है क्योंकि ये कानून के शासन और संवैधानिकता की बुनियाद हैं।हाल में सार्वजनिक तौर पर न्यायाधीशों पर व्यक्तिगत निशाना साधने की गतल प्रवृत्ति का उदय दुर्भाग्यपूर्ण है और इसकी अनुकरणीय रोकथाम की आवश्यकता है।

लोकतन्त्र (संस्कृत: *प्रजातन्त्रम्*) या प्रजातन्त्र एक ऐसी शासन प्रणाली है, जिसके अन्तर्गत जनता अपनी स्वेच्छा से निर्वाचन में आए हुए किसी भी उम्मीदवार को मत देकर अपना प्रतिनिधि चुन सकती है, तथा उसे विधायिका का सदस्य बना सकती है। लोकतन्त्र दो शब्दों से मिलकर बना है, "लोक + तन्त्र"। लोक का अर्थ है जनता तथा तन्त्र का अर्थ है शासन।यद्यपि लोकतन्त्र शब्द का प्रयोग राजनीतिक सन्दर्भ में किया जाता है, किन्तु लोकतन्त्र का सिद्धान्त दूसरे समूहों और संगठनों के लिये भी संगत है। मूलतः लोकतन्त्र भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों के मिश्रण बनता है।

अब्राहम लिंकन के अनुसार लोकतंत्र जनता का, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए शासन है। लोकतंत्र में ऐसी व्यवस्था रहती है की जनता अपनी मर्जी से विधायिका चुन सकती है। लोकतंत्र एक प्रकार का शासन व्यवस्था है, जिसमे सभी व्यक्ति को समान अधिकार होता हैं। एक अच्छा लोकतंत्र वह है जिसमे राजनीतिक और सामाजिक न्याय के साथ-साथ आर्थिक न्याय की व्यवस्था भी है। देश में यह शासन प्रणाली लोगो को सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करती हैं। लोकतन्त्र की परिभाषा के अनुसार यह "जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन है"। लेकिन अलग-अलग देशकाल और परिस्थितियों में अलग-अलग

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

धारणाओं के प्रयोग से इसकी अवधारणा कुछ जटिल हो गयी है। प्राचीनकाल से ही लोकतन्त्र के सन्दर्भ में कई प्रस्ताव रखे गये हैं, पर इनमें से कई कभी क्रियान्वित नहीं हुए।

प्राचीन काल मे भारत में सुदृढ़ व्यवस्था विद्यमान थी।[3,4] इसके साक्ष्य हमें प्राचीन साहित्य, सिक्कों और अभिलेखों से प्राप्त होते हैं। विदेशी यात्रियों एवं विद्वानों के वर्णन में भी इस बात के प्रमाण हैं।

प्राचीन गणतांत्रिक व्यवस्था में आजकल की तरह ही शासक एवं शासन के अन्य पदाधिकारियों के लिए निर्वाचन प्रणाली थी। योग्यता एवं गुणों के आधार पर इनके चुनाव की प्रक्रिया आज के दौर से थोड़ी भिन्न जरूर थी। सभी नागरिकों को वोट देने का अधिकार नहीं था। ऋग्वेद तथा कौटिल्य साहित्य ने चुनाव पद्धति की पुष्टि की है परंतु उन्होंने वोट देने के अधिकार पर रोशनी नहीं डाली है।

वर्तमान संसद की तरह ही प्राचीन समय में परिषदों का निर्माण किया गया था जो वर्तमान संसदीय प्रणाली से मिलता-जुलता था। गणराज्य या संघ की नीतियों का संचालन इन्हीं परिषदों द्वारा होता था। इसके सदस्यों की संख्या विशाल थी। उस समय के सबसे प्रसिद्ध गणराज्य लिच्छवि की केंद्रीय परिषद में 7707 सदस्य थे। वहीं यौधेय की केन्द्रीय परिषद के 5000 सदस्य थे। वर्तमान संसदीय सत्र की तरह ही परिषदों के अधिवेशन नियमित रूप से होते थे।[5,6]

किसी भी मुद्दे पर निर्णय होने से पूर्व सदस्यों के बीच में इस पर खुलकर चर्चा होती थी। सही-गलत के आकलन के लिए पक्ष-विपक्ष पर जोरदार बहस होती थी। उसके बाद ही सर्वसम्मति से निर्णय का प्रतिपादन किया जाता था। सबकी सहमति न होने पर बहुमत प्रक्रिया अपनायी जाती थी। कई जगह तो सर्वसम्मति होना अनिवार्य होता था। बहुमत से लिये गये निर्णय को 'भूयिसिक्किम' कहा जाता था। इसके लिए वोटिंग का सहारा लेना पड़ता था। तत्कालीन समय में वोट को 'छंद' कहा जाता था। निर्वाचन आयुक्त की भांति इस चुनाव की देख-रेख करने वाला भी एक अधिकारी होता था जिसे 'शलाकाग्राहक; कहते थे। वोट देने के लिए तीन प्रणालियां थीं-

(1) गूढ़क (गुप्त रूप से) – अर्थात अपना मत किसी पत्र पर लिखकर जिसमें वोट देने वाले व्यक्ति का नाम नहीं आता था।

(2) विवृतक (प्रकट रूप से) – इस प्रक्रिया में व्यक्ति सम्बन्धित विषय के प्रति अपने विचार सबके सामने प्रकट करता था। अर्थात खुले आम घोषणा।[7,8]

(3) संकर्णजल्पक (शलाकाग्राहक के कान में चुपके से कहना) - सदस्य इन तीनों में से कोई भी एक प्रक्रिया अपनाने के लिए स्वतंत्र थे। शलाकाग्राहक पूरी मुस्तैदी एवं ईमानदारी से इन वोटों का हिसाब करता था।

इस तरह हम पाते हैं कि प्राचीन काल से ही हमारे देश में गौरवशाली लोकतन्त्रीय परम्परा थी। इसके अलावा सुव्यवस्थित शासन के संचालन हेतु अनेक मन्त्रालयों का भी निर्माण किया गया था। उत्तम गुणों एवं योग्यता के आधार पर इन मन्त्रालयों के अधिकारियों का चुनाव किया जाता था।

मंत्रालयों के प्रमुख विभाग थे-

(1) औद्योगिक तथा शिल्प सम्बन्धी विभाग

(2) विदेश विभाग

(3) जनगणना

(4) क्रय-विक्रय के नियमों का निर्धारण

मंत्रिमंडल का उल्लेख हमें अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारत, इत्यादि में प्राप्त होता है। यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों में इन्हें 'रत्नि' कहा गया। महाभारत के अनुसार मंत्रिमंडल में 6 सदस्य होते थे। मनु के अनुसार सदस्य संख्या 7-8 होती थी। शुक्र ने इसके लिए 10 की संख्या निर्धारित की थी।

इनके कार्य इस प्रकार थे:-

(1) पुरोहित- यह राजा का गुरु माना जाता था। राजनीति और धर्म दोनों में निपुण व्यक्ति को ही यह पद दिया जाता था।

(2) उपराज (राजप्रतिनिधि)- इसका कार्य राजा की अनुपस्थिति में शासन व्यवस्था का संचालन करना था।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

(3) प्रधान- प्रधान अथवा प्रधानमन्त्री, मन्त्रिमण्डल का सबसे महत्वपूर्ण सदस्य था। वह सभी विभागों की देखभाल करता था।

(4) सचिव- वर्तमान के रक्षा मन्त्री की तरह ही इसका काम राज्य की सुरक्षा व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों को देखना था।

(5) सुमन्त्र- राज्य के आय-व्यय का हिसाब रखना इसका कार्य था। चाणक्य ने इसको समर्हत्ता कहा।

(6) अमात्य- अमात्य का कार्य सम्पूर्ण राज्य के प्राकृतिक संसाधनों का नियमन करना था।

(7) दूत- वर्तमान काल की इंटेलीजेंसी की तरह दूत का कार्य गुप्तचर विभाग को संगठित करना था। यह राज्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील विभाग माना जाता था।[9,10]

इनके अलावा भी कई विभाग थे। इतना ही नहीं वर्तमान काल की तरह ही पंचायती व्यवस्था भी हमें अपने देश में देखने को मिलती है। शासन की मूल इकाई गांवों को ही माना गया था। प्रत्येक गाँव में एक ग्राम-सभा होती थी। जो गाँव की प्रशासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था से लेकर गाँव के प्रत्येक कल्याणकारी काम को अंजाम देती थी। इनका कार्य गाँव की प्रत्येक समस्या का निपटारा करना, आर्थिक उन्नति, रक्षा कार्य, समुन्नत शासन व्यवस्था की स्थापना कर एक आदर्श गाँव तैयार करना था। ग्रामसभा के प्रमुख को ग्रामणी कहा जाता था।

सारा राज्य छोटी-छोटी शासन इकाइयों में बँटा था और प्रत्येक इकाई अपने में एक छोटे राज्य सी थी और स्थानिक शासन के निमित्त अपने में पूर्ण थी। समस्त राज्य की शासन सत्ता एक सभा के अधीन थी, जिसके सदस्य उन शासन-इकाइयों के प्रधान होते थे।

एक निश्चित काल के लिए सबका एक मुख्य अथवा अध्यक्ष निर्वाचित होता था। यदि सभा बड़ी होती तो उसके सदस्यों में से कुछ लोगों को मिलाकर एक कार्यकारी समिति निर्वाचित होती थी। यह शासन व्यवस्था एथेन्स में क्लाइस्थेनीज के संविधान से मिलती-जुलती थी। सभा में युवा एवं वृद्ध हर उम्र के लोग होते थे। उनकी बैठक एक भवन में होती थी, जो सभागार कहलाता था।[11,12]

एक प्राचीन उल्लेख के अनुसार अपराधी पहले विचारार्थ 'विनिच्चयमहामात्र' नामक अधिकारी के पास उपस्थित किया जाता था। निरपराध होने पर अभियुक्त को वह मुक्त कर सकता था पर दण्ड नहीं दे सकता था। उसे अपने से ऊँचे न्यायालय भेज देता था। इस तरह अभियुक्त को छः उच्च न्यायालयों के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता था। केवल राजा को दंड देने का अधिकार था। धर्मशास्त्र और पूर्व की नजीरों के आधार पर ही दण्ड होता था।

देश में कई गणराज्य विद्यमान थे। मौर्य साम्राज्य का उदय इन गणराज्यों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात कुछ नये लोकतान्त्रिक राज्यों ने जन्म लिया। यथा यौधेय, मानव और आर्जुनीयन इत्यादि।

प्राचीन भारत के कुछ प्रमुख गणराज्यों का ब्योरा इस प्रकार है:-

शाक्य- शाक्य गणराज्य वर्तमान बस्ती और गोरखपुर जिला (उत्तर प्रदेश) के क्षेत्र में स्थित था। इस गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु थी। यह सात दीवारों से घिरा हुआ सुन्दर और सुरक्षित नगर था। इस संघ में अस्सी हजार कुल और पाँच लाख जन थे। इनकी राजसभा, शाक्य परिषद के 500 सदस्य थे। ये सभा प्रशासन और न्याय दोनों कार्य करती थी। सभाभवन को सन्यागार कहते थे। यहाँ विशेषज्ञ एवं विशिष्ट जन विचार-विमर्श कर कोई निर्णय देते थे। शाक्य परिषद का अध्यक्ष राजा कहलाता था। भगवान बुद्ध के पिता शुद्धोदन शाक्य क्षत्रिय राजा थे। कौसल के राजा प्रसेनजित के पुत्र विडक्यभ ने इस गणराज्य पर आक्रमण कर इसे नष्ट कर दिया था।

लिच्छवि- लिच्छवि गणराज्य गंगा के उत्तर में (वर्तमान उत्तरी बिहार क्षेत्र) स्थित था। इसकी राजधानी का नाम वैशाली था। बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ ग्राम में इसके अवशेष प्राप्त होते हैं। लिच्छवि क्षत्रिय वर्ण के थे। वर्द्धमान महावीर का जन्म इसी गणराज्य में हुआ था। इस गणराज्य का वर्णन जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में प्रमुख रूप से मिलता है। वैशाली की राज्य परिषद में 7707 सदस्य होते थे। इसी से इसकी विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। शासन कार्य के लिए दो समितियां होती थीं। पहली नौ सदस्यों की समिति वैदेशिक सम्बन्धों की देखभाल करती थी। दूसरी आठ सदस्यों की समिति प्रशासन का संचालन करती थी। इसे इष्टकुल कहा जाता था। इस व्यवस्था में तीन प्रकार के विशेषज्ञ होते थे- विनिश्चय महामात्र, व्यावहारिक और सूत्राधार।[13,14]

लिच्छवि गणराज्य तत्कालीन समय का बहुत शक्तिशाली राज्य था। बार-बार इस पर अनेक आक्रमण हुए। अन्ततः मगधराज अजातशत्रु ने इस पर आक्रमण करके इसे नष्ट कर दिया। परन्तु चतुर्थ शताब्दी ई॰ में यह पुनः एक शक्तिशाली गणराज्य बन गया।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

वज्जि- लिच्छवि, विदेह, कुण्डग्राम के ज्ञातृक गण तथा अन्य पाँच छोटे गणराज्यों ने मिलकर जो संघ बनाया उसी को वज्जि संघ कहा जाता था। मगध के शासक निरन्तर इस पर आक्रमण करते रहे। अन्त में यह संघ मगध के अधीन हो गया।

अम्बष्ठ- पंजाब में स्थित इस गणराज्य ने सिकन्दर से युद्ध न करके सन्धि कर ली थी।

अग्रेय- वर्तमान अग्रवाल जाति का विकास इसी गणराज्य से हुआ है। इस गणराज्य में सिकन्दर की सेनाओं का डटकर मुकाबला किया। जब उन्हें लगा कि वे युद्ध में जीत हासिल नहीं कर पायेंगे तब उन्होंने स्वयं अपनी नगरी को जला लिया।

इनके अलावा अरिष्ट, औटुम्वर, कठ, कुणिंद, क्षुद्रक, पातानप्रस्थ इत्यादि गणराज्यों का उल्लेख भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

प्रत्येक राज्य चाहे वह उदारवादी हो या समाजवादी या साम्यवादी, यहाँ तक कि सेना के जनरल द्वारा शासित पाकिस्तान का अधिनायकवादी भी अपने को लोकतान्त्रिक कहता है। सच पूछा जाये तो आज के युग में लोकतान्त्रिक होने को दावा करना एक फैशन सा हो गया है।[15]

लोकतन्त्र की पूर्णतः सही और सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। क्रैन्स्टन ने ठीक ही कहा है कि लोकतन्त्र के सम्बन्ध में अलग-अलग धारणाएँ है। लिण्सेट की परिभाषा अधिक व्यापक प्रतीत होती हैं उसके अनुसार, "लोकतन्त्र एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली है जो पदाधिकारियों को बदल देने के नियमित सांविधानिक अवसर प्रदान करती है और एक ऐसे रचनातंत्र का प्रावधान करती है जिसके तहत जनसंख्या का एक विशाल हिस्सा राजनीतिक प्रभार प्राप्त करने के इच्छुक प्रतियोगियों में से मनोनुकूल चयन कर महत्त्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित करती है।" मैक्फर्सन ने लोकतन्त्र को परिभाषित करते हुए इसे 'एक मात्र ऐसा रचनातन्त्र माना है जिसमें सरकारों को चयनित और प्राधिकृत किया जाता है अथवा किसी अन्य रूप में कानून बनाये और निर्णय लिए जाते हैं।' शूप्टर के अनुसार, 'लोकतान्त्रिक विधि राजनीतिक निर्णय लेने हेतु ऐसी संस्थागत व्यवस्था है जो जनता की सामान्य इच्छा को क्रियान्वित करने हेतु तत्पर लोगों को चयनित कर सामान्य हित को साधने का कार्य करती है। वास्तव में, लोकतन्त्र मूलतः नागरिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए सहभागी राजनीति से संबद्ध प्रणाली है। लोकतन्त्र की अवधारणा के सम्बन्ध में प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:

1. लोकतन्त्र का पुरातन उदारवादी सिद्धान्त
2. लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त
3. लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त
4. प्रतिभागी लोकतन्त्र का सिद्धान्त
5. लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त अथवा जनता का लोकतन्त्र[16,17]

विचार-विमर्श

बीसवीं सदी में राजनीतिक विचारकों ने प्रश्न उठाना शुरू किया कि क्या जनसाधारण प्रतिदिन के जीवन में राजनीति में कोई भूमिका निभा सकते हैं? क्या सामान्य नागारिक, जो अपने जीविकोपार्जन में लगे रहते हैं, राजनीतिक भूमिका निभाने के लिए समय और शक्ति लगा सकते हैं? क्या जनसमूह बिना किसी प्रतिबंध के चुनावी लोकतंत्र के माध्यम से अपनी भावनाओं का खुला प्रदर्शन करता है तो स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी? इन प्रश्नों के उत्तर में ही लोकतंत्र के अभिजनवादी और बहुलवादी सिद्धान्त विकसित हुए हैं।

अभिजन (एलीट) पद का प्रयोग किसी समूह के ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग के लिए होता है जो कुछ कारकों की वजह से समुदाय में विशिष्ट हैसियत रखते हैं। यह अल्पसंख्यक वर्ग समाज में सत्ता के वितरण में अग्रणी भूमिका में होता है। राजनीतिक श्रेष्ठीवर्ग, प्रेस्थस के अनुसार, सामुदायिक मामलों में अपने संख्या-बल के अनुपात में कहीं ज्यादा सत्ता का उपभोग करता है।[18,19]

प्रजातंत्र के सबंध में अभिजन सिद्धान्त का अभ्युदय द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ इस सिद्धांत के प्रवर्त्तकों में विल्फ्रेडो पैरेटो, ग्रेटानोमोस्का, रॉबर्ट मिशेल्स और अमेरिकी लेखक जेम्स बर्नहाम तथा सी. राइट मिल्स प्रमुख हैं। इस सिद्धांत का मुख्य आधार यह मान्यता है कि समाज में दो तरह के लोग होते हैं- गिने चुने विशिष्ट लेग और विशाल जनसमूह। विशिष्ट लोग हमेशा शिखर तक पहुँचते हैं क्योंकि वे सारी अर्हताओं से सम्पन्न सर्वोत्तम लोग होते हैं। अभिजन वर्ग विशेष रूप से राजनीतिक अभिजन वर्ग, सारे राजनीतिक कृत्यों का निष्पादन करता है, सत्ता पर एकाधिकार कर लेता है और सत्ता से जुड़े सारे लाभ उठाता है। बहुसंख्यक समूह अभिजन वर्ग द्वारा मनमाने ढंग से नियंत्रित और निर्देशित होता है। संगठित अल्पसंख्यक ही हमेशा असंगठित जनसमूह को शासित और निर्देशित करता है। रॉबर्ट मिशेल्स ने 'अल्पतंत्र के लौह कानून' जैसी उक्ति का प्रयोग करते हुए कहा है कि सामान्य

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

वर्गों को अभिजन वर्ग की अधीनता स्वीकार करनी ही चाहिए क्योंकि जनसंख्या का एक विशाल भाग उदासीन कर्मण्य और स्व-शासन में अक्षम होता है। लोकतंत्र के अभिजन सिद्धान्त की मुख्य विशेषताए हैं :

- (1) लोग समान रूप से योग्य नहीं होते, अतः अभिजन और गैर-अभिजन का निर्माण अपरिहार्य है,
- (2) अपनी उच्चतर योग्यताओं के बल पर अभिजनवर्ग सत्ता-नियंत्रक एवं प्रभविष्णु बन जाता है,
- (3) अभिजनवर्ग अनवरत एक जैसा नहीं रहता। इस वर्ग में नए लोग शामिल होते हैं और पुराने लोग बाहर हो जाते है,
- (4) बहुसंख्यक जनसमुदाय, जो गैर-अभिजनवर्ग का निर्मायक है, में अधिकांश भावशून्य, आलसी और उदासीन होते हैं, इसलिए एक ऐसा अल्पसंख्यक वर्ग का होना आवश्यक है जो नेतृत्व प्रदान करे और
- (5) आज के युग में शासक अभिजनवर्ग में मुख्य रूप से बुद्धिजीवी, औद्योगिक प्रबंधक और नौकरशाह होते हैं।

लोकतंत्र के अभिजन सिद्धान्त का सुव्यवस्थित प्रतिपादन सर्वप्रथम जोसेफ शुंट्टर ने अपनी पुस्तक 'कैपिटलिज्म, सोशलिज्म एंड डेमोक्रेसी' (पूंजीवाद, समाजवाद और लोकतंत्र, 1942) में किया। बाद में सार्टोरी, रॉबर्ट डाल, इक्सटाईन, रेमंड अरोन, कार्ल मैन हियुमंड, सिडनी वर्बा आदि ने अपनी रचनाओं में इस मत का समर्थन किया। लोकतंत्र की यह अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या का विशाल भाग अक्षम और तटस्थ होता है और वह योग्यता और क्षमता के आधार पर कुछ लोगों का चुनाव करता है जो राजनीतिक दल का नियंत्रित और संचालित करते हैं। बहुसंख्यक लोग जीविका कमाने में व्यस्त रहते हैं। उन्हें राजनीतिक मामलों में न तो अभिरूचि होती है, न समझ। इसलिए वे अभिजनवर्ग से कुछ लोगों का चयन कर लेते हैं और उनके अनुयायी बन जाते हैं। अभिजन सिद्धांत के अनुसार आज के जटिल समाज में कार्यक्षमता के लिए विशेषज्ञता आवश्यक है और विशेषज्ञों की संख्या हमेशा कम ही होती है। अतः राजनैतिक नेतृत्व ऐसे चुनिंदा सक्षम लोगों के हाथ में होना आवश्यक है। यह सिद्धान्त लोगो की अतिसहभागिता को भी खतरनाक मानता है, क्योंकि तानाशाही प्रवृत्ति का हिटलर जैसा कोई ताकतवर नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जनसमूह को लामबंद कर लोकतंत्र को ही खत्म कर दे सकता है जिसका सीधा अर्थ है मौलिक स्वतंत्रताओं का अंत। इसलिए उनका दावा है कि लोकतांत्रिक और उदारवादी मूल्यों को बचाए रखने के लिए जनसमूह को राजनीति से अलग रखना जरूरी है। अभिजन सिद्धान्त के अनुसार आम जनता के द्वारा वास्तविक शासन हो ही नहीं सकता। शासन हमेशा जनता के लिए होता है, जनता के द्वारा कभी नही, क्योंकि जनता जिन्हें प्रतिनिधि चुनती है वे अभिजनवर्ग के ही होते हैं। दूसरे शब्दों में लोकतंत्र का अर्थ है अभिजन वर्गों के बीच प्रतिद्वंद्विता और जनता द्वारा यह निर्णय कि कौनसा अभिजन ऊपर शासन करेगा। इस प्रकार, लोकतंत्र मात्र एक ऐसी कार्यप्रणाली है जिसके द्वारा छोटे समूहों में से एक जनता के न्युनतकम अतिरिक्त समर्थन से शासन करता हैं अभिजनवादी सिद्धांत यह भी मानता है कि अभिजन वर्गों- राजनीतिक दलों, नेताओं, बड़े व्यापारी घरानों के कार्यपालकों, स्वैच्छिक संगठनों के नेताओं और यहां तक कि श्रमिक संगठनों के बीच मतैक्य आवश्यक है ताकि लोकतंत्र की आधारभूत कार्यप्रणाली को गैर जिम्मेदार नेताओं से बचाया जा सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि बाह्य तौर पर तो अभिजन वर्ग सिद्धान्त लोकतंत्र के विचार को अधिक व्यवहारवादी और आनुभविक बनाने का दावा करती है, लेकिन अंततः यह लोकतंत्र को एक ऐसे रूढ़िवादी राजनीतिक सिद्धांत में बदल देता है जो उदारवादी अथवा नव-उदारवादी यथास्थितिवाद से संतुष्ट हो जाता है और इसके स्थायित्व को बनाए रखना चाहता है।[20]

अभिजनवाद की कई विचारकों ने आलोचना की है जिनमें सी. बी. मैक्फर्सन, ग्रीम डंकन, बैरी होल्डन, रॉबर्ट डाल आदि प्रमुख हैं। इस सिद्धान्त के विरुद्ध मुख्य आपत्तियां निम्नलिखित हैं:

- (1) अभिजनवाद लोकतंत्र का अर्थ ही विकृत कर देता है और इसकी आधारभूत विशेषताओं की उपेक्षा कर इसे स्वेच्छाचारी बना देता है। यदि जनता का काम प्रतिनिधियों को चुनना भर ही है तो शासन संचालन में उनके पास बोलने-कहने को अधिकार नहीं रह जाता और ऐसी स्थिति में प्रणाली अलोकतांत्रिक बन जाती है।

- (2) यह सिद्धांत लोकतंत्र की परंपरागत पुरातन अवधारणा के नैतिक उद्देश्य को समाप्त कर देता है पुरातन अवधारणा के अनुसार लोकतंत्र का लक्ष्य मानवजाति का उन्नयन है, लेकिन अभिजन सिद्धान्त इस नैतिक पक्ष की अवहेलना कर देता है और पूरी स्थिति अल्पसंख्यक अभिजनवर्ग के शासन की निष्क्रिय स्वीकृति हो जाती है।

- (3) अभिजन सिद्धान्त सहभागिता, जो लोकतांत्रिक शासन का केन्द्रीय तत्त्व है, का महत्त्व घटा देता है और दावा करता है कि सहभागिता संभव है ही नहीं। इस तरह जनता द्वारा शासन असंभव हो जाता है।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

- (4) अभिजन सिद्धान्त एक सामान्य व्यक्ति को राजनीतिक दृष्टि से अक्षम और निष्क्रिय रूप में चित्रित करता है, एक ऐसा व्यक्ति जो अपना जीवन-निर्वाह करता है, शाम में अपने परिवार या मित्रों के बीच अथवा मीडिया के साधनों के उपयोग में अपना समय बिताता है और श्रेष्ठी समूहों में से किसी एक को समय-समय पर चुनने के अतिरिक्त कुछ नही करता।

- (5) अभिजन सिद्धांत लोकतांत्रिक प्रक्रिया के द्वारा मौलिक परिवर्तन लाने के बदले प्रणाली के स्थायित्व बनाए रखने पर ही विशेष बल देता है। उसका मुख्य उद्देश्य लोकतांत्रिक प्रणाली को कायम रखना है। वह सामाजिक आन्दोलन को लोकतंत्र के लिए खतरा और अभिजनवर्ग द्वारा व्यवस्थित कानूनी प्रक्रिया का विघटनकारी मानता है।

परिणाम

एक संवैधानिक संस्था , संवैधानिक निकाय या संवैधानिक अंग एक संविधान द्वारा बनाई गई एक सरकारी संस्था है । चूंकि ये संस्थान सीधे संविधान से अपनी शक्तियां, कर्तव्य और जिम्मेदारियां प्राप्त करते हैं, जो कि उप-संवैधानिक कानूनों की तुलना में विधायिका द्वारा संशोधित किया जाना कठिन है , उनकी स्थिति उप-संवैधानिक कानूनों द्वारा बनाई गई संस्थाओं की तुलना में अधिक स्थिर और स्वतंत्र है।
सरकार के अंदर संवैधानिक संस्थाओं की भूमिका प्रत्येक संविधान के राष्ट्रीय संदर्भ और पहचान को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, जर्मन संविधान के अनुसार, जर्मन संघीय सरकार में केवल पांच संस्थानों को संवैधानिक संस्थानों (जर्मन : Verfassungorgane) के रूप में माना जाता है, जो शक्तियों को अलग करने के लिए क्लासिक संरचना को दर्शाता है ; जर्मन विधायिका के ' बुंदेसरात ' और ' बुंडेस्टाग ', जर्मन कार्यपालिका के राष्ट्रपति और कैबिनेट , और जर्मन न्यायपालिका के संघीय संवैधानिक न्यायालय । [1]
हालाँकि, आधुनिक संविधान जैसे कि दक्षिण अफ्रीकी संविधान विभिन्न सरकारी संस्थानों को सीधे स्वयं बनाता है, जिसकी शास्त्रीय सरकारी संरचना में स्वतंत्र एजेंसी के समान भूमिका होती है। दक्षिण अफ्रीका के इस तथाकथित ' अध्याय नौ संस्थानों ' को सरकार की जवाबदेही की गारंटी देने के संवैधानिक प्रयास के रूप में समझाया गया है, फिर भी चिंताएं भी हैं क्योंकि ये नई 'संवैधानिक रूप से स्वतंत्र' एजेंसियां दक्षिण अफ्रीका की पारंपरिक शाखाओं और संस्थानों के बीच शक्तियों के पृथक्करण के भीतर तनाव पैदा कर सकती हैं। सरकार। [2]संविधान द्वारा सीधे बनाई गई ये आधुनिक स्वतंत्र एजेंसियां कभी-कभी अपनी अपेक्षित भूमिका को प्राप्त करने में विफल रहती हैं, क्योंकि उनकी संस्थागत स्वतंत्रता का स्तर विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।

• बहुसंख्यक जनसमुदाय, जो गैर-अभिजनवर्ग का निर्मायक है, में अधिकांश भावशून्य, आलसी और उदासीन होते हैं, इसलिए एक ऐसा अल्पसंख्यक वर्ग का होना आवश्यक है जो नेतृत्व प्रदान करे।

• अभिजन सिद्धान्त के अनुसार आज के जटिल समाज में कार्यक्षमता के लिए विशेषज्ञता आवश्यक है और विशेषज्ञों की संख्या हमेशा कम ही होती है। अतः राजनैतिक नेतृत्व ऐसे चुनिंदा सक्षम लोगों के हाथ में होना आवश्यक है।

• लोकतंत्र मात्र एक ऐसी कार्यप्रणाली है जिसके द्वारा छोटे समूहों में से एक जनता के न्युनतकम अतिरिक्त समर्थन से शासन करता हैं अभिजनवादी सिद्धान्त यह भी मानता है कि अभिजन वर्गों- राजनीतिक दलों, नेताओं, बड़े व्यापारी घरानों के कार्यपालकों, स्वैच्छिक संगठनों के नेताओं और यहां तक कि श्रमिक संगठनों के बीच मतैक्य आवश्यक है ताकि लोकतंत्र की आधारभूत कार्यप्रणाली को गैर जिम्मदार नेताओं से बचाया जा सके।

• सहभागिता सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार लोकतंत्र वास्तविक अर्थ प्रत्येक व्यक्ति की समान सहभागिता है, न कि मात्र सरकार को स्थायी बनाए रखना जैसा कि अभिजनवादी अथवा बहुलवादी सिद्धान्तकार मान लेते हैं। सच्चे लोकतंत्र का निर्माण तभी हो सकता है जब नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हों और सामूहिक समस्याओं में निरंतर अभिरूचि लेते रहें। सक्रिय सहभागिता इस लिए आवश्यक है ताकि समाज की प्रमुख संस्थाओं के पर्याप्त विनिमय हों और राजनीतिक दलों में अधिक खुलापन और उत्तरदायित्व के भाव हों।

• सहभागी लोकतंत्र के सिद्धान्तकारों के अनुसार यदि नीतिगत निर्णय लेने का जिम्मा केवल अभिजन वर्ग तक सीमित रहता है तो उसके लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप बाधित होता है। इसलिए वे इसमें आम आदमी की सहभागिता की वकालत करते हैं। उनका

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

मानना है कि यदि लोकतांत्रिक अधिकार कागज के पन्नों अथवा संविधान के अनुच्छेदों तक ही सीमित रहे तो उन अधिकारों का कोई अर्थ नहीं रह जाता, अतः सामान्य लोगों द्वारा उन अधिकारों का वास्तविक उपभोग किया जाना आवश्यक है।

• लोकतंत्र राज्य का एक स्वरूप है और वर्ग-विभाजित समाज में सरकार अधिनायकवादी और लोकतांत्रिक दोनों होती है। यह एक वर्ग के लिए लोकतंत्र है तो दूसरे के लिए अधिनायकवाद। बुर्जुआ वर्ग चुंकि अपने हित साधन में पूंजीवादी प्रणाली को नियंत्रित और संचालित करता है, इसलिए उसे सत्ता से बेदखलकर समाजवादी लोकतंत्र को स्थापित करना आवश्यक है।[21]

निष्कर्ष

संवैधानिक अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र और संविधानवाद के क्षेत्र में एक अनुसंधान कार्यक्रम है जिसे महज 'संवैधानिक कानून के आर्थिक विश्लेषण' की परिभाषा से परे "आर्थिक और राजनीतिक एजेंटों के विकल्पों और गतिविधियों को बाधित करने वाले कानूनी-संस्थागत-संवैधानिक नियमों के वैकल्पिक समूहों से संबंधित विकल्प" के रूप में वर्णित किया गया है। यह उन नियमों के भीतर आर्थिक और राजनीतिक एजेंटों के विकल्पों की व्याख्या से अलग है, जो एक "रूढ़िवादी" अर्थशास्त्र का विषय है।[1] संवैधानिक अर्थशास्त्र "मौजूदा संवैधानिक ढांचे और सीमाओं या उस ढांचे द्वारा बनाई गयी अनुकूल परिस्थितियों के साथ प्रभावी आर्थिक फैसलों की संगतता" का अध्ययन करता है।[2] इसका वर्णन संवैधानिक मामलों पर अर्थशास्त्र के साधनों का प्रयोग करने के लिए एक व्यावहारिक दृष्टिकोण के रूप में किया गया है।[3] उदाहरण के लिए, प्रत्येक देश की एक प्रमुख चिंता, उपलब्ध राष्ट्रीय आर्थिक और वित्तीय संसाधनों के समुचित रूप से आवंटन के संबंध होती है। इस समस्या का कानूनी समाधान संवैधानिक अर्थशास्त्र के दायरे के भीतर आता है।

संवैधानिक अर्थशास्त्र "बिक्री योग्य" सामानों और सेवाओं के वितरण की गतिशीलता के कार्यों के रूप में आर्थिक संबंधों को सीमित करने वाले विश्लेषण के विपरीत, राजनीतिक आर्थिक फैसलों के महत्वपूर्ण प्रभावों पर ध्यान देता है। "राजनीतिक अर्थशास्त्री जो मानक सलाह प्रदान करना चाहते हैं, उन्हें आवश्यक रूप से उस प्रक्रिया या संरचना पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जिसके अंतर्गत राजनीतक फैसले लिए जाते हैं। मौजूदा संविधान या संरचनाएं या नियम "गंभीर जांच का विषय हैं".[4]

न्यायाधीश रिचर्ड पोस्नर ने आर्थिक विकास के लिए एक संविधान के महत्व पर जोर दिया था। वे एक संविधान और आर्थिक विकास के बीच आपसी संबंध की जांच करते हैं। पोस्नर संवैधानिक विश्लेषण को मुख्य रूप से न्यायाधीशों की समझ के दृष्टिकोण से देखते हैं जो किसी संविधान की व्याख्या और प्रयोग के लिए एक महत्वपूर्ण शक्ति का गठन करते हैं, इस प्रकार आम कानून में वस्तुतः संवैधानिक क़ानून के ढांचे का निर्माण करते हैं। वे "न्यायिक विवेक के प्रयोग के लिए व्यापक बाहरी सीमाओं को स्थापित करने में" संवैधानिक प्रावधानों के महत्व पर जोर देते हैं। इस प्रकार किसी मामले पर कोशिश करते समय एक न्यायाधीश सबसे पहले विवेक और संविधान के पत्र द्वारा निर्देशित होता है। इस प्रक्रिया में अर्थशास्त्र की भूमिका संविधान की "वैकल्पिक व्याख्या के परिणामों की पहचान" में मदद करना है। वह आगे बताते हैं कि "अर्थशास्त्र उन सवालों के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है जो उचित कानूनी व्याख्या पर लागू होते हैं।" अंत में जैसा कि न्यायाधीश पोस्नर जोर देते हैं, "संवैधानिक मामलों का फैसला करने के लिए आर्थिक दृष्टिकोण की सीमाएं संविधान द्वारा निर्धारित की जाती [हैं]." इसके अलावा उनका तर्क है कि "बुनियादी आर्थिक अधिकारों का प्रभावी संरक्षण आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है।"[8]

1980 के दशक में अमेरिका में संवैधानिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में शैक्षिक अनुसंधान में हुई वृद्धि के साथ भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने लगभग एक दशक तक भारतीय संविधान के कई अनुच्छेदों की एक बहुत ही व्यापक व्याख्या का उपयोग करते हुए गरीबों और दलितों की ओर से जनहित संबंधी मुकदमों को बढ़ावा दिया। यह संवैधानिक अर्थशास्त्र की प्रक्रिया के वास्तविक व्यावहारिक प्रयोग का एक ज्वलंत उदाहरण है।[9]

कान्स्टिटूशनल कोर्ट ऑफ रसियन फेडरेशन के प्रेसिडेंट वेलरी जॉर्किन ने संवैधानिक अर्थशास्त्र की शैक्षिक भूमिका के लिए एक विशेष संदर्भ बनाया एक, "रूस में संवैधानिक अर्थशास्त्र जैसे नए शैक्षिक विषयों को विश्वविद्यालय के क़ानून एवं अर्थशास्त्र विभागों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।[21]

संदर्भ

1. लुडविग वान डेन हॉवे, 2005. "संवैधानिक अर्थशास्त्र द्वितीय," दी एल्गर कम्पेनियन टू लॉ एंड इकॉनोमिक्स, पीपी 223-24. Archived 2014-09-20 at the Wayback Machine
2. ↑ पीटर बारेनबोइम, 2001. "संवैधानिक अर्थशास्त्र और रूसी बैंक," फॉर्धम जर्नल ऑफ कॉर्पोरेट एंड फाइनेंशियल लॉ, 7(1), पी. 160. Archived 2011-07-19 at the Wayback Machine

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 7, Issue 6, June 2020

3. ↑ क्रिश्चियन किर्कनेज़, दी प्रिंसिपल्स ऑफ सब्सिडरी इन दी ट्रीटी ऑन यूरोपियन यूनियन: ए क्रिटिक फ्रॉम ए प्रिरेस्पेक्टिव ऑफ कन्सिट्यूशनल इकॉनोमिक्स, 6 टीयूएल. जे.आईएनटीएल. एंड कॉम्प.एल. (TUL. J.INT'L. & COMP. L.) 291, 293 (1998)
4. ↑ जेम्स एम. बुकानन, 1986. "दी कंस्टीटूशन ऑफ इकॉनोमिक पॉलिसी," Archived 2013-05-31 at the Wayback Machine नोबेल प्राइज़ लेक्चर.
5. ↑ बुकानन, जे. लॉजिकल फॉर्मूलेशन्स ऑफ कन्सिट्यूशनल लिबर्टी. वॉल्यूम 1. इंडियानापोलिस, 1999. पी. 372.
6. ↑ लुडविग वान डेन हॉवे, 2005. "संवैधानिक अर्थशास्त्र द्वितीय," दी एल्गर कम्पेनियन टू लॉ एंड इकॉनोमिक्स, पीपी 223-24. Archived 2014-09-20 at the Wayback Machine
7. ↑ http://www.springerlink.com/content/102866/?sortorder=asc&p_o=61
8. ↑ पोस्नर आर., 1987. "संविधान एक आर्थिक दस्तावेज़ के रूप में," जॉर्ज वाशिंगटन लॉ रिव्यू, 56(1), पीपी. 4 Archived 2019-01-27 at the Wayback Machine-38. जे. डब्ल्यू. एली आदि में पुनःप्रकाशित, 1997, मेन थीम्स इन दी डाटाबेस ऑवर प्रोपर्टी राइट्स, पीपी. 186-220. Archived 2011-05-11 at the Wayback Machine
9. ↑ जेरेमी कूपर, फिलॉसफी ऑफ लॉ: क्लासिक एंड कंटेम्पररी रीडिंग्स में पोवर्टी एंड कन्सिट्यूशनल जस्टिस, लैरी मे और जेफ ब्राउन द्वारा संपादित, विली-ब्लैकवेल, ब्रिटेन, 2010.
10. ↑ वेलरी जॉर्किन, दी वर्ल्ड रूल ऑफ लॉ मूवमेंट एंड रसियन लीगल रिफॉर्म में ट्वेल्व थीसिस ऑन लीगल रिफॉर्म इन रशिया, फ्रांसिस नीटे और हॉली नीलसन द्वारा संपादित, जस्टिसइन्फोम, मास्को, 2007]
11. ↑ "पीटर बेरेनबोइम, नाताल्या मर्कुलोवा, दी 25थ एनिवर्सरी ऑफ कन्सिट्यूशनल इकॉनोमिक्स: दी रसियन मॉडल एंड लीगल रिफोर्म, इन दी वर्ल्ड रूल ऑफ लॉ मूवमेंट एंड रसियन लीगल रिफॉर्म, फ्रांसिस नीटे और हॉली नीलसन द्वारा संपादित, जस्टिसइन्फोम, मास्को, 2007" (PDF). मूल (PDF) से 5 जुलाई 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 31 जुलाई 2011.
12. लोकतंत्र का अर्थ और परिभाषा क्या है
13. लोकतंत्रीक सरकार की प्रमुख विशेषताएं
14. लोकतंत्र पर वंशवाद हावी Archived 2012-05-18 at the Wayback Machine
15. भारत में लोकतन्त्र : एक विश्लेषणात्मक विवेचन Archived 2014-02-03 at the Wayback Machine
16. भारतीय लोकतंत्र : बदहवास चेहरा (लोकहिंदी)
17. Democracy in Ancient India Archived 2002-08-24 at the Wayback Machine by Steve Muhlberger, Associate Professor of History, Nipissing University
18. संसदीय लोकतंत्र को परिष्कृत करना ही एक मात्र विकल्प Archived 2013-03-03 at the Wayback Machine
19. विश्व लोकतंत्र रचना
20. १००० वर्ष पूर्व के प्रजातंत्र का संविधान
21. Democracy of a high standard - ancient example Archived 2012-01-17 at the Wayback Machine (The Hindu)